एकात्मता के पुजारी

डा. बाबा साहब अम्बेडकर

- हो.वे. शेषाद्रि
- दत्तोपन्त ठेंगडी

प्रकाशक :

लोकहित प्रकाशन

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,

लखनऊ – २२६ ००४

तृतीय संस्करण

दत्तात्रेय जयन्ती (मार्गशीर्ष शुक्ल १५)

सम्वत् २०६०

८ दिसम्बर, २००३

मूल्य : रु. ५.००

मुद्रक :

नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,

लखनऊ – २२६ ००४

हिन्दुत्व ही राष्ट्रीय समरसता लाने में असमर्थ है

हो० वे० शेषाद्रि

दो महापुरुष

सामान्य आधुनिक हिन्दू समाज में समरसता के लिए काम करने वाले दो महापुरुष उल्लेखनीय हैं– डॉ. अम्बेडकर और डा० हेडगेवार। डा. अम्बेडकर ने समता के प्रयास के लिए पंथ–परिवर्तन जैसा कदम उठाया और डॉ० हेडगेवार ने रा.स्व. संघ की स्थापना के माध्यम से मौन रूप से इस दिशा में कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर की मूल श्रद्धा या मूल कल्पना तो यही थी कि हिन्दू समाज एकरस होकर समानता के आधार पर चले। प्रारम्भ में मतान्तर की कल्पना भी उनके मन में नहीं आयी थी। उन्होंने भरसक प्रयास भी किया कि तथाकथित उच्च जाति का मानस अनुकूल बने। उनसे पहले भी तथाकथित उच्च जाति के महापुरुष अस्पृश्यता हटाने, जातिभेद मिटाने और समरसता लाने के प्रयास में जुटे थे। उन्होंने भी अम्बेडकर जी के प्रयास की सराहना की थी। उनके लिए अम्बेडकर जी के मन में भी काफी आदर था। १६२४ में मुम्बई में आयोजित बहिष्कृत हितकारिणी सभा में उन्होंने कहा था कि अस्पृश्यों का उद्धार केवल अस्पृश्यों के बलबूते पर ही नहीं होगा, अपितु पूरे समाज को साथ लेकर ही आगे बढ़ना होगा। उनका प्रयास यही रहा कि पूरा हिन्दू समाज आगे बढ़े और हिन्दू समाज के विचारों में ही परिवर्तन हो परन्तु बाद में जब तथाकथित ऊँची जाति के लोग उनका विरोध करने लगे, तब उनको लगा कि हिन्दू समाज में परिवर्तन आने की आशा नहीं है। फिर जब उनको लगा कि बौद्ध धर्म में दया है, समता है, करुणा है, दीन–दुखियों के बारे में विशेष सहानुभूति है तो उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार करने का विचार किया। बुद्ध ने भी हिन्दू समाज में आये दोषों को निकालने का प्रयास किया। हिन्दू सांस्कृतिक सामाजिक धारा से बाहर बुद्ध

नहीं गये और न ही अम्बेडकर जी ने ऐसा प्रयास किया। उनको लगा कि जब तक हिन्दू समाज मनुस्मृति का अनुकरण करता रहेगा, तब तक अस्पृश्यों के उद्धार का कोई मार्ग नहीं है, कोई आशा नहीं है। बाद में जब स्वतन्त्र भारत की सरकार में कानून मन्त्री बने और हिन्दू कोड बिल का उन्होंने प्रस्ताव रखा, उस समय भी उन्होंने हिन्दू शब्द की व्याख्या के अन्तर्गत वैदिक मतावलंबियों के अलावा शैव, सिख, जैन, बौद्ध सभी को शामिल किया था। क्योंकि उनकी श्रद्धा थी कि हिन्दू समाज में समरसता आनी चाहिए। उस समय जब वह एक प्रकार से विफल हो रहे थे तो उन्होंने दूसरा मार्ग अपनाया। ऐसा नहीं है कि उनके ध्यान में संघ का उदाहरण नहीं आया था।

संघ का प्रयास

जब वह पुणे के संघ शिविर में आये थे तो उन्होंने पाया कि यहाँ तो अस्पृश्यता नाम की चीज ही नहीं है। सभी लोग वहाँ पर समान थे। उच्च जाति, निचली जाति, ब्राह्मण आदि सभी के साथ उन्होंने समानता का व्यवहार देखा। परन्तु उनको लगा कि इस पद्धति से शीघ्रता से पूरे समाज में परिवर्तन नहीं आ सकता। हालाँकि यह भी सत्य है कि हिन्दू समाज के बारे में डॉ. अम्बेडकर का उस समय जो दृष्टिकोण था, वस्तुस्थिति वैसी ही नहीं थी। हिन्दू समाज सुधारवादी रहा है। समाज में सकारात्मक भावात्मक प्रयास होते रहे हैं। आधुनिक काल में छोटे–छोटे भावों से ऊपर उठने, सबको समेटकर बड़ा आह्वान देने तथा भिन्नता की उपेक्षा करने की भूमिका लेकर डॉ. हेडगेवार आगे बढ़े। उनके संघ कार्य का परिणाम भी अच्छा रहा। संघ की शाखाओं, स्वयंसेवकों के कार्यों द्वारा हिन्दू समाज में इस प्रकार का व्यापक सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। यह सिद्ध हुआ कि इस प्रकार हिन्दुत्व के आह्वान से छोटे–मोटे जातिपंथ सम्प्रदाय के भेद से ऊपर उठकर हिन्दू एकजुट हो सकते हैं। समानता के आधार पर वे आगे बढ़ सकते हैं। तुलना करने पर डा. अम्बेडकर और डा. हेडगेवार दोनों के दृष्टिकोण और प्रयास की दिशा अलग–अलग प्रतीत हो सकती है, लेकिन दोनों का उद्देश्य, दोनों के विचार की मुख्यधारा, मुख्य निष्ठा एक ही थी कि हिन्दू समाज में एकता, समरसता, समानता आनी चाहिए।

नया दृष्टिकोण

इसलिए देश भर में डा. अम्बेडकर की जन्मशताब्दी के अवसर पर समारोह, उत्सव का आयोजन करने में संघ के स्वयंसेवक अग्रणी रहे हैं।

अम्बेडकर जन्म शताब्दी के सन्दर्भ में, वे हरिजन नेता भी संघ के मंच पर आये हैं जिनका संघ से अब तक सम्बन्ध नहीं था। इस कारण उनको भी नया दृष्टिकोण मिल रहा है। यह भी उनके ध्यान में आ रहा है कि इस प्रकार से वास्तव में हिन्दू समाज में परिवर्तन आ सकता है। तमिलनाडु में भी यह अनुभव देखने को मिला है। वहाँ के द्रविड़वादी और अपने को कट्टर विरोधी मानने वाले भी संघ के मंच पर आ रहे हैं। उनका कहना भी यही है कि द्रविड़ आन्दोलन के संस्थापक श्री रामस्वामी के स्वप्न को संघ ही साकार कर सकता है, क्योंकि वे जातिविहीन समाज का स्वप्न देखते थे। धीरे–धीरे डा. हेडगेवार का दृष्टिकोण सफल हो रहा है। यदि यह दृश्य डा. अम्बेडकर देखते तो वह भी आनंदित होकर, इसी का समर्थन करते, इसमें कोई शंका नहीं है।

समता और समरसता

समता की चर्चा के सन्दर्भ में यह ध्यान में आता है कि कम्युनिस्ट भी समता की बात करते थे। यद्यपि कम्युनिज्म पूरे विश्व में ध्वस्त हो चुका है, फिर भी स्पष्टीकरण के लिए यह जानना जरूरी है कि कम्युनिज्म की समता की अवधारणा और हिन्दू अवधारणा में क्या अन्तर है ? असल में कम्युनिज्म तो समता के बारे में सिर्फ आर्थिक अधिकार चाहते हैं, वे स्वयं शोषक बन जाते हैं। इसीलिए युगोस्लाविया के बहुत बड़े कम्युनिस्ट चिंतक जिलास ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि रूस में एक ऐसा नया वर्ग तैयार हुआ है जो आर्थिक दृष्टि से सबसे सम्पन्न, सभी प्रकार की सुख–सुविधाओं से युक्त है और बाकी सब बुर्जुआ या सर्वहारा बन गये हैं। माओ–त्से–तुंग ने यही बात लिखी है कि कम्युनिस्ट क्रान्ति होने के बाद जो कम्युनिस्ट सत्ता में आ जाते हैं, उनमें निहित स्वार्थ पनप जाते हैं, बाद में वे अपना स्थान छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। इसलिए फिर से क्रान्ति करनी पड़ती है। इसका मतलब यह है कि उन्होंने शाश्वत क्रान्ति की बात कही है। कम्युनिज्म की जो हालत हुई है, उससे सिद्ध होता है कि उनका आर्थिक समता का नारा विफल रहा है। स्वयं कम्युनिज्म के सिद्धान्त ही उसके पराभव का कारण बने हैं। परन्तु हिन्दू समानता की कल्पना सर्वांगीण समरसता की कल्पना है। उसकी मूलभूत श्रद्धा यह है कि सभी में एक ही आत्मा है, सभी में भगवान् का अंश है, इसलिए कोई ऊँच–नीच नहीं है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक़, सांस्कृतिक अर्थात् जीवन के सभी अंगोपांग में हम समानता की कल्पना करते हैं। हिन्दुत्व की दृष्टि में यह भी

विशेष बात है कि समानता समरसता से उत्पन्न होती है। घर–परिवार में सभी का एक–दूसरे के प्रति समान व्यवहार होता है और विभिन्न प्रकार की भूमिका भी निभाते हैं क्योंकि उनमें समरसता होती है, परस्पर प्रेम होता है। शरीर में भी विभिन्न प्रकार के अवयव होते हैं। अन्यान्य प्रकार के कार्य निर्वाह करते हुए भी उन अवयवों में एकरसता, समंरसता होती है। इसलिए हिन्दुत्व और संघ की दृष्टि से पहले हम समरसता पर जोर देते हैं। समरसता के साथ–साथ स्वयं ही समानता भी आती है। यही हिन्दुत्व और संघ की विशेषता है।

प्रश्न उठता है कि हिन्दू के जीवन दर्शन में समस्त प्राणियों में एक ही ईश्वर का अंश होने के सिद्धान्त के बावजूद छुआछूत और मानवीय धरातल पर विषमता का इतना भयानक रूप कैसे पैदा हो गया ?

सुधारवादी हिन्दू समाज

इस बारे में ऊहापोह है, भिन्न–भिन्न प्रकार के मत हैं। सामाजिक जीवन में कई बार भिन्न–भिन्न प्रकार की विकृतियाँ आ जाती हैं। इसलिए बार–बार हिन्दू समाज में स्मृतियों का जन्म हुआ है। समय–समय पर समाज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए काल की चुनौती को पहचान कर समाज सुधार करने के लिए कई प्रकार की स्मृतियाँ हैं। धर्म का व्यावहारिक रूप समय–समय पर समाज के सामने रखने का कार्य समाज–चिंतक, तपस्वी लोग करते आये हैं। विकृतियाँ तो हर समाज में आती हैं। किन परिस्थितियों में विषमता उत्पन्न हुई, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि समाज के नियमों का पालन करने वाले अपराधी हों, कुछ समाज में नीति–नियमों को न मानने वाले भी रहे होंगे। हरेक समाज में इस प्रकार के लोग होते हैं। आजकल जिस प्रकार अपराधियों को जेल में रखा जाता है, उसी प्रकार शायद उनको गाँव के बाहर रखा जाता होगा। वह वर्ग भी समाज के बाहर बढ़ता रहा होगा, कौन जाने ? ऐसी कुछ तो प्रक्रिया चली होगी इससे जनित असमानता को समाप्त करने के लिए समय–समय पर प्रयास भी हुए हैं। बड़े–बड़े सन्तों ने प्रयास किये हैं। पिछले एक सौ सालों में स्वामी दयानन्द सरस्वती से लेकर म. गान्धी और डा. अम्बेडकर ने ऐसे ही प्रयास किये। केरल में बहुत बड़े सन्त, नारायण गुरु महाराज ने भी काफी सफल प्रयास किया। यह हिन्दू समाज की विशेषता है कि उनमें समाज सुधारक पैदा होते रहे हैं।

इसलिए समाज में यदि विकृति का जन्म अनिवार्य है तो यह भी देखना

चाहिए कि समाज में स्वयं को सुधारने की क्षमता और वैसी चेतना है या नहीं ? यह महत्त्व की बात है। हिन्दू समाज की दृष्टि से यह सौभाग्य का विषय है कि समय–समय पर विकृति के सुधार का प्रयास होता आया है।

परिस्थिति के अनुसार व्यवस्था

इसी सन्दर्भ में कुछ समय पहले सरसंघचालक श्री देवरस ने कहा था कि चातुर्वर्ण व्यवस्थाओं के समय में वह जैसी भी रही है, किन्तु आज वर्ण–व्यवस्था नाम की कोई चीज बची ही नहीं है। वह अस्तित्व में ही नहीं है। इसलिए उसके बहाने कोई पुनरुद्धार करने का कोई सवाल ही नहीं है। पूजनीय गुरुजी ने एक और बात कही थी कि समय–समय पर समाज अपनी नयी परिस्थिति और नये समाज के अनुसार नयी व्यवस्था भी विकसित कर लेता है। जिस प्रकार से पेड़ के विकसित होते समय नये पत्ते, नयी शाखाएँ निकलती हैं तो पुराने पत्ते, टहनियाँ खुद ही गिर जाती हैं। इसी प्रकार समाज की व्यवस्था भी है। ऐसा हमारा कहना नहीं है कि पुरानी व्यवस्था को हम शाश्वत रूप से टिकाते रहेंगे, हमारे समाज की पद्धति और व्यवस्था भी ऐसी नहीं है। फिर से वही पद्धति लागू करें– ऐसा संभव नहीं है और यह हमारा दावा भी नहीं है।

समता का अर्थ

संघ के प्रयासों को देखकर कुछ लोगों के मन में प्रश्न उठता है कि आखिर समता की अवधारणा से हमारा तात्पर्य क्या है ? एक समाज में विभिन्न स्तरों पर ऊँच–नीच एक अर्थ में भले ही न हो लेकिन स्तरों में भेद तो रहता है। जब हम समता स्थापित करने की बात कहते हैं, समत्व–मूलक समाज की बात कहते हैं कि समाज में ऊँच–नीच का भाव बहुत कुछ पैसे के आधार पर तय होता है। पश्चिमी देशों में भी करोड़पति और अन्यों के बीच काफी अन्तर है। उनके वर्ग में बाकी लोगों का प्रवेश नहीं होता। इसी प्रकार जो लोग सत्ता में आ जाते हैं उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है और बाकी लोग नीचे रह जाते हैं। परन्तु पाश्चात्य देशों में काफी मात्रा में राजनीतिक भेद नहीं हैं। केवल भारत में इस प्रकार की स्थिति बनी हुई है। ब्रिटिश जमाने से जो पद्धति चली उसके कारण इस प्रकार का भेद उत्पन्न हुआ है। परन्तु हिन्दू दृष्टिकोण में परिवार और शरीर की प्रकृति के आधार पर समता का भाव है। बच्चा छोटा है, माता–पिता को आदर देता है, लेकिन बच्चे के बारे में बड़ों के मन में यह भाव होता है कि वह निम्न है। इसी प्रकार समाज में आर्थिक आधार पर भेद हो सकता है, कुछ

प्रतिभा और बुद्धिमत्ता की दृष्टि से भी अन्तर हो सकते हैं, किन्तु इस कारण व्यवहार परस्पर प्रेम की दृष्टि से ऊँच–नीच भाव न हों– यह हिन्दू समाज का मूलभूत दृष्टिकोण है। सामान्य प्राणी, पशु–पक्षी, वनस्पति में भी हम भगवान को देखते हैं। सभी में एक ही परमात्मा होने की धारणा हम मानते हैं। यही हमारा आदर्श है। यही समानता, समरसता का एक मात्र आधार हो सकता है। जीवन में विविधता होती है। विविधता के बिना कोई समाज, कोई जीवन, कोई सृष्टि हो ही नहीं सकती। विविधता में एकता का दर्शन जब हम करते हैं तब जाकर समानता, समरसता आती है।

संघ और अस्पृश्य

एक और मिथ्या धारणा प्रचलित करने का प्रयास होता है कि संघ में तथाकथित उच्चवर्गीय लोगों की बहुलता है। पूछा जाता है कि आखिरकार जिसको हरिजन या दलित अथवा अस्पृश्य जाति से सम्बन्धित कहा जाता है, उसके बीच में संघ की सक्रियता कहाँ तक है और वे संघ–कार्य की मुख्य धारा में कहाँ दिखाई देते हैं ? जिसे हम मुख्यधारा कहते हैं उसका अर्थ हिन्दू एकता है। कार्यकर्ता किस जाति के हैं और किस घर में पैदा हुए हैं– यह जानना मुख्यधारा नहीं होती। मुख्यधारा इस बात पर निर्भर होती है कि कार्यकर्त्ताओं की मानसिकता क्या है ? उनकी कार्यप्रणाली कैसी है ? उनकी निष्ठा क्या है ? कार्यक्रमों की रचना क्या है ? उनकी मान्यता क्या है ? इस दृष्टि से देखा जाये तो संघ के कार्यकर्ता किसी भी जाति के हों, चाहे वनवासी हों, ब्राह्मण हों या कोई और, सभी का व्यवहार सभी की मानसिकता समरसता की है। स्वयं गान्धी जी जब संघ शिविर में आये थे तो उन्होंने यही पाया था। जैसे–जैसे संघ कार्य बढ़ रहा है, वनवासियों में, पिछड़ी जातियों में, जहाँ–जहाँ बढ़ रहा है, वहाँ के लोग शाखा में आते हैं जैसे केरल के ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाओं का काफी विस्तार हो रहा है। उनमें प्रत्येक जाति के तरुण आते हैं। उनमें अथवा, नायर, नम्बूदिरी, हरिजन सभी आते हैं। वे एक दूसरे की जाति को जानते भी नहीं हैं। कई जगहों पर हजारों शाखाओं से हजारों कार्यकर्त्ता आते हैं, सैकड़ों प्रचारक भी बने हैं। हम जानते हैं कि हरिजनों में से कई अच्छे–अच्छे प्रचारक निकले हैं, कई अधिकारी भी हैं, इसलिए मुख्यधारा हिन्दुत्व की ही है। वह एकता की धारा है, समानता की धारा है। जहाँ–जहाँ पर स्वयंसेवक सेवा कार्य के द्वारा शिशु–मन्दिरों, शाखाओं आदि के माध्यम से, धार्मिक जागरण के माध्यम से पिछड़ी बस्तियों

में प्रवेश कर रहे हैं, वहाँ–वहाँ हमें बहुत अच्छा प्रतिसाद मिल रहा है। वास्तव में अन्य वर्गों से बढ़कर हरिज़नों व पिछड़े लोगों के अन्तःकरण में विशुद्ध धार्मिक श्रद्धा है। अपने बड़े–बड़े स्वामी धर्माचार्यों का भी यही कहना है कि पिछड़े वर्गों से जितनी पवित्र धार्मिक धारा दिखाई देती है, वह अन्य किसी वर्ग में दिखाई नहीं देती है हमारा अनुभव भी यही है।

हरिजनों पर अत्याचार

देश कि किसी भी क्षेत्र में अराष्ट्रीय शक्तियाँ अराजकता पैदा करती हैं तो उसका संघ के स्वयंसेवक विरोध करते हैं। जहाँ हरिजनों पर अत्याचार होते हैं, उनकी महिलाओं को जलाया जाता है या उनके साथ अभद्रता की जाती है, वनवासियों पर अत्याचार होते हैं– उनका प्रचार के तौर पर हम मुकाबला नहीं करना चाहते हैं। क्योंकि जाति का नाम लेने से टकराव बढ़ता जाता है। परन्तु हम घटनास्थल पर जाते हैं, दोनों पक्षों को समझाते हैं, दोनों का इस प्रकार मेल कराते हैं कि आगे चलकर टकराव न हो। अभी आगरा में जाटव–जाटों के बीच हुए विवाद पर भी हमने पूरी शक्ति से स्वयंसेवक भेजकर अपनी भूमिका निभायी। जगह–जगह पर होने वाली इस प्रकार की घटनाओं में स्वयंसेवक सक्रिय होते हैं। दोनों पक्षों का मन मिलाने का हम प्रयास करते हैं। बाकी लोग तो प्रचार करते हैं कि इसके खिलाफ यह है, उसके खिलाफ वह है– इस प्रकार से क्रिया, फिर प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया की प्रतिक्रिया होती है। इस पर हमारा विश्वास नहीं है। इससे भेद और टकराव बढ़ता है। इसलिए हम तो निःशब्द ढंग से दोनों को मिलाने, मेल कराने का काम करते हैं। जहाँ–जहाँ पर शाखाएँ चली हैं, वहाँ–वहाँ पर पुराने समय से चले आ रहे टकराव के वायुमण्डल को काफी मात्रा में कम करने में हमें सफलता मिली है। केरल, तमिलनाडु तथा अन्यानेक प्रान्तों में ऐसे अच्छे अनुभव रहे हैं। पहले जहाँ पर लगातार संघर्ष होता रहा है, वहाँ पर भी सामान्य स्थिति हो गयी है। पर अपने प्रयासों की हम चर्चा नहीं करते, ढोल नहीं पीटते क्योंकि ऐसा करने से कोई फायदा नहीं होता, फिर से वही जाति का भूत खड़ा हो जाता है।

राजनीतिक विकृति

जाति का भूत खड़ा करने में राजनीति ने भी बड़ी भूमिका निभायी है। राजनेता तो चुनाव में जाति के आधार पर ही उम्मीदवार खड़े करते हैं, उसी के आधार पर आह्वान करते हैं और टकराव पैदा करते हैं। आगरा में जो कुछ हुआ,

उसमें भी राजनीतिज्ञों का काफी हाथ था। जो तथाकथित जातिप्रथा है उसे मुख्यतः चुनावी राजनीति का बल मिल रहा है। इसलिए चुनाव पद्धति में भी इस प्रकार परिवर्तन लाया जाना चाहिए जिसमें जाति का इतना प्रभाव न हो। ऐसी यदि कोई नयी व्यवस्था, नया तंत्र बनाया जाये तो जाति का प्रभाव, जाति समस्या, जाति–जाति के बीच का टकराव, स्पर्द्धा प्रतिस्पर्द्धा काफी मात्रा में कम हो सकती है। ऐसी चुनाव पद्धति बनायें तो समस्या सुलझ सकती है। जैसी चुनाव पद्धति इंग्लैण्ड में रही या किसी और देश में रही, उसे वैसा ही भारत में अपनाना तो कोई विवेक का मार्ग नहीं है। जाति पन्थ की विविधता अपनी राजनीतिक पूँजी बनाने वालों को सत्ता में आने का अवसर न मिले– इस प्रकार की कोई चुनाव पद्धति अपनानी चाहिए। यह ठीक है कि जनमत प्रकट होना चाहिए, लेकिन वह समाज के एक गुट में प्रकट नहीं होता। छोटे संकीर्ण मामलों को उभारने वाले स्वार्थी लोगों को अवसर न मिले।

प्रायः पत्रकार बन्धु पूछते हैं कि यदि संघ जाति–भेद के खिलाफ है, तो फिर आरक्षण का क्या औचित्य रह जाता है, तो हमारा कहना यह है कि सामाजिक दृष्टि से अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग कई वर्ष से पिछड़े हुए हैं। इसलिए उनको आरक्षण मिलना चाहिए। अन्यथा वे दिल्ली में खड़े होकर प्रतिस्पर्द्धी से आगे बढ़ने की स्थिति में नहीं रहेंगे, अभी भी नहीं हैं। उनके लिए आरक्षण होना ही चाहिए। इसलिए जहाँ जाति भी आरक्षण का लाभ देने का एक आधार हो सकती है, वहाँ यह भी है कि जाति को एक मात्र आधार नहीं माना जा सकता। एक बात और भी है। उनको शिक्षा और संस्कार प्रदान करने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। उन्हें सम्मान दिलाना चाहिए। सांस्कृतिक शिक्षा दिलानी चाहिए। पिछड़ी, दुर्बल और उपेक्षित जातियों के उत्थान के लिए सर्वांगीण विचार होना चाहिए। पर दुर्भाग्य से राजनीतिक कारणों और अपने–अपने वोट बैंकों की दृष्टि से समाज तोड़कर योजनाएँ बनायी जाती हैं। कुछ राज्य सरकारों और वी.पी. सिंह ने भी आरक्षण की घोषणाएँ इसीलिए कीं। राजनीतिक दृष्टि से मामला उठाने के कारण बात बिगड़ती जा रही है।

हमारा दोष

यह स्वीकार करना ही होगा कि हिन्दू समाज का भी यह दोष रहा है कि जंगलों में, पहाड़ों पर रहने वाले अपने वनवासी बन्धुओं तथा सामाजिक क्षेत्र में रहने पर भी शहरों, गाँवों में कुरीति का शिकार बने हुए लोगों से अन्य हिन्दू

समाज के लोग अभी तक समरस नहीं हुए थे। इस मानसिक दूरी का गैर लोग फायदा उठा रहे हैं। जिनमें राष्ट्र विरोधी तत्त्व, अराष्ट्रीय पार्टियाँ, गैर–हिन्दू मत वाले ईसाई मिशनरी, मुस्लिम व नक्सलवादी भी हैं। लेकिन इस स्थिति का मुख्य कारण तो हिन्दू समाज का दोष है। हिन्दू समाज के सभी लोग एक–दूसरे के बारे में आपसी प्रेम, परस्पर सहायता के तौर पर मिलते रहें, इसलिए अन्य समाज की सहायता और अन्य समाज में सम्मान प्राप्त कराने के लिए हम प्रयास कर रहे हैं। वनवासी क्षेत्रों में वनवासी कल्याण आश्रम के नाम से अपना काम चल रहा है। पिछड़ी बस्तियों में कई प्रकार के सेवा कार्य चलाये गये हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य केवल उनकी सहायता करना ही नहीं है। पूरे हिन्दू समाज के साथ उनका प्रेमपूर्ण नाता जोड़ना तथा उनके प्रति आत्मीयता का भाव जगाना कि ये भी अपने समाज के बन्धु हैं, इन्हें हमने दुर्लक्ष्य किया, जो ठीक नहीं हुआ, इस प्रकार की जागृति पैदा करना हमारा उद्देश्य है। जैसे–जैसे हिन्दू समाज में आत्मीयता बढ़ रही है, अराष्ट्रीय शक्तियों का बोलबाला कम हो रहा है। इस प्रकार की भावना जाग्रत होने पर वे अराष्ट्रीय या अहिन्दू शक्तियों के शिकार नहीं बनते हैं, क्योंकि मूलतः उनके अन्तःकरण में राष्ट्रीयता की चिंगारी और हिन्दुत्व के प्रति श्रद्धा है ही। किन्तु वे वर्षों से, सदियों से पिछड़े हुए थे, इसलिए उन पर एक प्रकार से विस्मरण की राख जमा हो गयी थी। उसे हटाने के लिए अराष्ट्रीय शक्तियों को समाप्त करना जरूरी है। पिछड़े और अस्पृश्य वर्गों में कई सदियों के आक्रमण तथा अन्याय अत्याचार के कारण हीनता का भाव पैदा हो गया था। डा. अम्बेडकर ने आत्मगौरव, आत्मसम्मान जगाने का प्रयास किया। अम्बेडकर जी के दिवंगत होने के पश्चात् दलित आंदोलन थोड़ा गलत दिशा में चला। अन्य हिन्दू समाज के बारे में डा. अम्बेडकर की श्रद्धा थी, वे पूरे देश को ध्यान में रखकर दिशा तय करते थे, पर इसके बदले में आज हिन्दू धर्म, हिन्दू समाज के खिलाफ अम्बेडकर जी का नाम लेकर कुछ लोग चलते हैं। यह ठीक नहीं है। पिछड़े वर्ग से हीनता का भाव निकालें, उनमें आत्मगौरव जाग्रत करें, यह होना चाहिए।

❖

बंधुभाव होगा तो देश बचेगा-अम्बेडकर

□ दत्तोपन्त ठेंगड़ी

संघ की भूमिका

कुछ वर्ष पूर्व वसन्त व्याख्यानमाला में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वर्तमान सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस ने सामाजिक समता और हिन्दू संगठन विषय पर बोलते हुए कहा था–

"यदि अस्पृश्यता गलत नहीं है तो दुनिया में कुछ गलत नहीं है।" महाराष्ट्र प्रान्त के तलजाई शिविर में उन्होंने घोषित किया था कि समतायुक्त और शोषणमुक्त हिन्दू समाज का निर्माण ही हमारा ध्येय है। अभी पिछले विजयादशमी महोत्सव में नागपुर में बताया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में जितने अन्तर्जातीय विवाह हुए हैं, उतने अन्यत्र कहीं भी किसी भी सामाजिक संस्था के सदस्यों में नहीं हुए हैं। हम लोग प्रचार और विज्ञापनबाजी नहीं करते। इसीलिए लोगों को यह पता नहीं है। किन्तु यह बात समाज को ध्यान में रखनी चाहिए कि अस्पृश्यता हिन्दू समाज पर कर्ज रूप में लदी है और वह कर्ज समाज को चुकाना होगा। पूर्वाग्रह दूषित तथाकथित प्रगतिशील नेता चाहे जो कहें, संघ के तीनों सरसंघचालकों द्वारा समझायी गयी भूमिका, रामजन्मभूमि पर 'अछूत' कहे जाने वाले बन्धु से विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा कराया गया शिलान्यास, नासिक के कालाराम मन्दिर में बाबा साहब के साथ में मन्दिर प्रवेश हेतु सत्याग्रह करने वाले बन्धु द्वारा राम ज्योति का प्रज्वलित करना और अब स्वयंसेवकों द्वारा महाराष्ट्र में "महात्मा फुले–डा. अम्बेडकर संदेश यात्रा" का आयोजन, ये ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे बाबा साहब अम्बेडकर संतुष्ट ही होते।

सामाजिक समरसता निर्माण हुए बगैर सामाजिक समता नहीं स्थापित हो सकती, ऐसी धारणा पूज्य डा० हेडगेवार के समान ही पूज्य बाबासाहब की भी थी। उन्होंने २५ नवम्बर, १९४७ को दिल्ली में कहा था, "हम सब भारतीय परस्पर सगे भाई हैं– ऐसी भावना अपेक्षित है। इसे ही 'बन्धुभाव' कहा जाता है और आज उसी का अभाव है। जातियाँ आपसी ईर्ष्या और द्वेष बढ़ाती हैं। अतः यदि 'राष्ट्र' के उच्चासन तक हम पहुँचना चाहते हैं तो इस अवरोध को दूर करना होगा, तभी बन्धुभाव पनपेगा। बन्धुभव ही नहीं रहेगा तो समता, स्वाधीनता सब अस्तित्वहीन हो जायेंगे।"

बन्धुभाव की गारंटी

एक अन्य अवसर पर बाबसाहब ने कहा– "मेरा तत्त्वज्ञान राजनीति से नहीं, धर्म से उपजा है। भगवान् बुद्ध के उपदेशों से मैंने वह ग्रहण किया है। उसमें स्वाधीनता और समता को स्थान है। किन्तु अपरिमित स्वाधीनता से समता का नाश होता है और विशुद्ध समता में स्वाधीनता का स्थान नहीं रहता। मेरे तत्त्वज्ञान में स्वाधीनता और समता का उल्लंघन न हो केवल इसलिए सुरक्षा के नाते विधान (कानून) के लिए जगह है। किन्तु कानून ही स्वाधीनता और समता की गारंटी है ऐसा मैं नहीं मानता। इसीलिए मेरे विचार में बन्धुभाव के लिए बड़ा ऊँचा स्थान है। स्वाधीनता और समता के उचित परिपालन में केवल 'बन्धुभाव' ही सुरक्षा की गारंटी हो सकता है। इसी बन्धुता का दूसरा नाम मानवता है और मानवता ही धर्म है।"

हिन्दू संगठन के लिए संघ के उपक्रम के मूल में यही भावना निहित है, यह सभी जानते हैं। 'सर्वेषांऽविरोधेन' काम करने की संघ की पद्धति है। संघ का काम बढ़ता देखकर कुछ लोगों के पेट में दर्द होता है। ये ऐसे कुछ समाजवादी प्रगतिशील कहलाने वाले महाराष्ट्र के नेता हैं जो कभी चार लोगों को भी अपने साथ लेकर नहीं चल सके। उनकी उस बाँझ महिला जैसी स्थिति है जिसे दूसरों के बच्चे होना बर्दाश्त नहीं होता। इस मनःस्थिति के कारण ही संघ का विरोध करना वे अपना एक मात्र कार्य मानते हैं। ऐसे लोगों को समझाना व्यर्थ है, क्योंकि सोते हुए को उठाया जा सकता है, सोने का नाटक करने वाले को नहीं उठाया जा सकता। इन प्रगतिशील महानुभावों का उद्देश्य विरोध के लिए विरोध करना मात्र है। समाचार–पत्र ही इनके एक मात्र शक्तिस्रोत हैं। उनके माध्यम से वे रणनीति के रूप से सतत् प्रयास करते रहे कि 'दलित समाज' और संघ परस्पर विरोधी हैं– ऐसा आभास निर्माण किया जाये। इसीलिए इन लोगों ने यह प्रचार जोरों से किया कि नागपुर में संघ का मुख्यालय होने के कारण संघ को मानो चिढ़ाने के लिए ही बाबासाहब ने धर्मान्तरण के लिए नागपुर चुना। इससे जो गलतफहमी दलित और सवर्ण समाज में फैली, उसकी ओर बाबासाहब का ध्यान गया। इसलिए उन्होंने आरम्भ में ही कहा कि नागपुर का चुनाव भारत के मध्य में होने के कारण शास्त्रशुद्ध रीति से किया गया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि "जो लोग ऐसा आरोप लगा रहे हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का केन्द्र होने के कारण उन्हें चिढ़ाने के लिए मैंने नागपुर का चुनाव किया, उनकी यह सोच असत्य और द्वेष–प्रेरित है।"

संघ से सम्पर्क

बाबासाहब को संघ के विषय में पूरी जानकारी थी। १९३५ में वह पुणे में महाराष्ट्र के पहले संघ शिविर में आये थे। उसी समय उनकी डा. हेडगेवार से भी भेंट हुई थी। वकालत के लिए वे दापोली (महाराष्ट्र) गये थे, तब भी वे वहाँ की संघ शाखा में गये थे और संघ स्वयंसेवकों से दिल खोलकर संघ कार्य के बारे में चर्चा की थी। १९३७ की कऱ्हाड शाखा (महाराष्ट्र) के विजयादशमी उत्सव पर बाबासाहब का भाषण और उसमें संघ के विषय में प्रगट किये गये उनके विचार जिन्हें आज भी स्मरण हैं, ऐसे लोग आज भी वहाँ हैं। सितम्बर १९४८ में श्री गुरुजी और बाबासाहब की दिल्ली में भेंट हुई थी। गांधीजी की हत्या के बाद सरकार ने द्वेष के कारण संघ पर प्रतिबंध लगाया था, उसे हटवाने के लिए पू. बाबासाहब, सरदार पटेल और श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कोशिश की थी।

१९३९ में पूना संघ शिक्षा वर्ग में सायंकाल के कार्यक्रम हेतु बाबासाहब आये थे। डा. हेडगेवार भी वहीं थे। लगभग ५२५ पूर्ण गणवेशधारी स्वयंसेवक संघस्थान पर थे। बाबासाहब ने पूछा, 'इनमें अस्पृश्य कितने हैं ?' डा. हेडगेवार ने कहा, 'अब आप पूछिए न ?' बाबासाहब ने कहा, "देखो, मैं पहले ही कहता था।" इस पर डा. हेडगेवार ने कहा, "यहाँ हम अस्पृश्य हैं ऐसा किसी को कभी लगने ही नहीं दिया जाता। अब यदि चाहें तो जो उपजातियाँ हैं, उनका नाम लेकर पूछिए।" तब बाबासाहब ने कहा– "वर्ग में जो चमार, महार, मांग, मेहतर हों वे एक–एक कदम आगे आयें।" ऐसा कहते ही कोई सौ से ऊपर स्वयंसेवक आगे आये।

१९५३ में मा. मोरोपंत पिंगले, मा. बाबासाहब साठे और प्राध्यापक ठकार औरंगाबाद में बाबासाहब से मिले थे। तब उन्होंने उनसे संघ के बारे में ब्योरेवार जानकारी प्राप्त की। शाखाएँ कितनी हैं, संख्या कितनी रहती है आदि पूछा। वह जानकारी प्राप्त करने के बाद बाबासाहब मोरोपंत जी से कहने लगे, 'मैंने तुम्हारी ओ.टी.सी. देखी थी। उसमें जो तुम्हारी शक्ति थी, उसमें इतने वर्षों में जितनी होनी चाहिए थी उतनी प्रगति नहीं हुई। प्रगति की गति बड़ी धीमी दिखाई देती है। मेरा समाज इतने दिन प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं है।'

धर्मान्तरण के पूर्व...

धर्मान्तरण के कुछ दिन पूर्व मैंने उनसे पूछा था, बीते समय में कुछ अत्याचार हुए तो ठीक है, लेकिन अब हम कुछ तरुण लोग जो कुछ गुणदोष रहे होंगे, उनका प्रायश्चित करके नयी तरह से समाज रचना का प्रयास कर रहे हैं, यह बात आप के ध्यान में है क्या ?

'यू मीन आर.एस.एस. ?' (उन्हें यह पता था कि मैं संघ का प्रचारक हूँ) उन्होंने कहा, 'क्या तुम समझते हो मैंने इस बारे में विचार नहीं किया ?'

आगे उन्होंने बताया, "संघ १९२५ में बना। आज तुम्हारी संख्या २७–२८ लाख है, ऐसा मानकर चलते हैं। इतने लोगों को एकत्र करने में आपको २७–२८ वर्ष लगे। तो इस हिसाब से सारे समाज को इकट्ठा करने में कितने साल लगेंगे। मैं जानता हूँ कि गणितीय और ज्योमितीय प्रगति एक जैसी नहीं होती। लेकिन मेढक कितना भी फूले, वह बैल तो नहीं बन सकता। इनमें जितना समय लगेगा उससे न तो परिस्थिति ही प्रतीक्षा करेगी, न ही मैं। मेरे सामने प्रश्न यह है कि मुझे जाने से पहले अपने समाज को एक निश्चित दिशा देनी चाहिए। क्योंकि यह समाज अब तक दलित शोषित, पीड़ित रहा है; और उसमें जो नयी चेतना आ रही है उसमें व्यवस्था के प्रति रोष का होना स्वाभाविक है। इस प्रकार का जो समाज है वह कम्युनिज्म का लक्ष्य बन सकता है। मैं ऐसा होना उचित नहीं समझता। इसलिए राष्ट्र की दृष्टि से कोई न कोई दिशा देनी आवश्यक है, यह मैं मानता हूँ। आप संघ वाले भी राष्ट्र की दृष्टि से प्रयत्न करते हैं, किन्तु यह ध्यान रखें कि–

'अनुसूचति जातियों और कम्युनिज्म के बीच अम्बेडकर अवरोध हैं तथा सवर्ण हिन्दुओं और कम्युनिज्म के बीच गोलवलकर अवरोध हैं।' यह शब्दशः उनका कथन है।

राष्ट्रहित में परम साहसी अम्बेडकर

बाबासाहब पं. नेहरू की विदेश नीति के कटु आलोचक थे। उन्होंने कहा था, एक ओर मुस्लिम देश आसानी से पाकिस्तान के साथ मिलकर गुट बना सकते हैं और इस ओर चीन को ल्हासा पर कब्जा कर लेने देने से हमारे प्रधानमंत्री ने चीन को हमारी सीमा के पास तक आ भिड़ने में मदद की है।

संविधान में धारा ३७० जोड़ने के बारे में भी बाबासाहब को इसके लिए सहमत करने की जिम्मेदारी पं. नेहरू ने शेख अब्दुल्ला पर सौंपी थी। प्रत्यक्ष चर्चा में भाग लेना इस संकेतात्मक बन्धन के कारण संभव न होने से बाबासाहब ने ३७० धारा का विरोध करने का काम अपने मित्र मौलाना हसरत मोहानी से करवाया।

भाषावार प्रान्त रचना देश के लिए घातक होगी, यह चेतावनी देने का कार्य केवल दो महापुरुषों ने ही किया था एक परम पूजनीय गुरुजी, दूसरे पू. डा. बाबासाहब अम्बेडकर। राज्य के पुनर्गठन में उनकी अवधारणा की इकाइयाँ (यूनिट्स) पं. दीनदयाल जी की जनपद अवधारणा से मेल खाती थीं।

शूद्र भी क्षत्रिय थे यह उनके द्वारा प्रमाणित किये जाने पर अनेक लोग बेचैन हो उठे थे। राष्ट्रहित की ओर सच बात निर्भीकतापूर्वक प्रकट करने का साहस उनमें था। कांग्रेस, ब्रिटिश सरकार, मुस्लिम लीग, सनातनी, सवर्ण धर्माचार्य– इन सबके सामने तो उन्होंने निडर होकर अपना सत्य पक्ष रखा ही, लोकमान्य तिलक के आर्यों के भारत आगमन के निष्कर्ष को भी उन्होंने निडर होकर चुनौती दी थी और उसका खंडन किया था। इतना ही नहीं जिनको वे गुरु मानते रहे उन महात्मा फुले के ब्राह्मणों के ईरान से भारत में आने के सिद्धांत का भी उन्होंने खंडन किया था।

अम्बेडकर की महानता

१४ अप्रैल, १९४२ को बाबासाहब के ५०वें जन्म दिवस पर शुभकामनाएँ देते हुए स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने लिखा था, "अम्बेडकर अपने व्यक्तित्व, विद्वत्ता, संगठन कुशलता और नेतृत्व कुशलता के कारण ही देश के एक आधारभूत महापुरुष गिने जा सकेंगे। किन्तु अस्पृश्यता के उन्मूलन और लाखों अस्पृश्य बन्धुओं में साहसपूर्ण आत्म–विश्वास और चेतना जगाने में जो यश उन्हें मिला है उससे उनके द्वारा भारत की अमूल्य सेवा हुई है। यह उनका कार्य चिरंतन स्वरूप का, देशभक्ति पूर्ण और मानवतावादी है। अम्बेडकर जैसे महान् व्यक्ति का जन्म, तथाकथित अस्पृश्य जाति में हुआ यह बात अस्पृश्य वर्ग की निराशा मिटा कर कथित स्पृश्यजनों के थोथे व्यक्तित्व एवं बड़प्पन को चुनौती देने की प्रेरणा उन्हें दिये बगैर नहीं रहेगी। अम्बेडकर के प्रति आदर रखते हुए मैं उनके स्वस्थ दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ, जिससे वे अपने समाज में बड़े प्रभावी परिवर्तनकारी अभियान चला सकें।"

बाबसाहब की नियुक्ति संविधान सभा द्वारा ध्वज समिति के सदस्य के रूप में होते ही हिन्दुत्वनिष्ठ नेताओं ने उनसे अनुरोध किया था कि वे भगवा ध्वज को राष्ट्र ध्वज के रूप में प्रस्तुत करें।

११ सितम्बर, १९४९ को 'संडे स्टैंडर्ड' ने छापा कि भारत के कानून मन्त्री डा. अम्बेडकर उन लोगों में हैं जिन्होंने भारत की राजभाषा संस्कृत बनाने का प्रस्ताव रखा है। इस विषय में पूछने पर डा. अम्बेडकर ने पी.टी.आई. संवाददाता से कहा, "संस्कृत में क्या हर्ज है? भारत की राजभाषा संस्कृत होगी", यह संशोधन का मूल पाठ है।

❖

डा. बाबासाहब अम्बेडकर- जीवन दर्शन

१४ अप्रैल सन् १८९१ महू (मध्य प्रदेश) में जन्म।

१९०० सातारा (महाराष्ट्र) के शासकीय माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश।

१९०८ मुम्बई विद्यापीठ से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण।

१९१५ एम.ए. उत्तीर्ण।

१९१७ कोलम्बिया (न्यूयार्क) से पी-एच.डी उपाधि प्राप्त। गायकवाड़ महाराज (वड़ोदरा रियासत, गुजरात) के सैनिक सेक्रेटरी।

१९१८ सिडनहेम कालेज, मुम्बई में प्राध्यापक। अध्ययन हेतु इंग्लैण्ड के लिए प्रस्थान।

१९२३ बैरिस्टर उपाधि प्राप्त। मुम्बई प्रदेश विधानसभा के सदस्य।

१९२७ महाड़ (महाराष्ट्र) के तालाब-जल उपयोग के लिए सत्याग्रह।

१९२८ शासकीय विधि महाविद्यालय में प्राध्यापक। साइमन कमीशन के मुम्बई प्रदेश समिति के सदस्य।

१९३० 'काला राम मन्दिर' प्रवेश, नासिक, के लिए सत्याग्रह।

१९३२ भारतीय विधान सुधार निमित्त संयुक्त संसद समिति के सदस्य।

१९३५ प्राचार्य-शासकीय विधि महाविद्यालय।

१९३६ स्वतन्त्र मजदूर दल की स्थापना।

१९३६ मुम्बई विधानसभा के सदस्य।

१९४१ बौद्ध जन पंचायत समिति की स्थापना।

१९४२ आल इण्डिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की स्थापना।

१९४५ पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी की स्थापना।

१९४७ केन्द्रीय नेहरू मन्त्रिमण्डल में कानून-मन्त्री, विधान निर्मात्री परिषद् के अध्यक्ष।

१९५० भारतीय संविधान प्रस्तुत। कोलम्बो (श्रीलंका) में विश्व बौद्ध परिषद् में उपस्थित।

१९५२ राज्य सभा सदस्य।

१९५४ विश्व बौद्ध परिषद के लिए रंगून (ब्रह्म देश) प्रस्थान।

१९५५ भारतीय बौद्ध महासभा की स्थापना।

१९५६ बौद्ध पन्थ का स्वीकार, सामूहिक पन्थ दीक्षा, विश्व बौद्ध परिषद् काठमाण्डू (नेपाल) में उपस्थित।

१९५६ महानिर्वाण।

❖

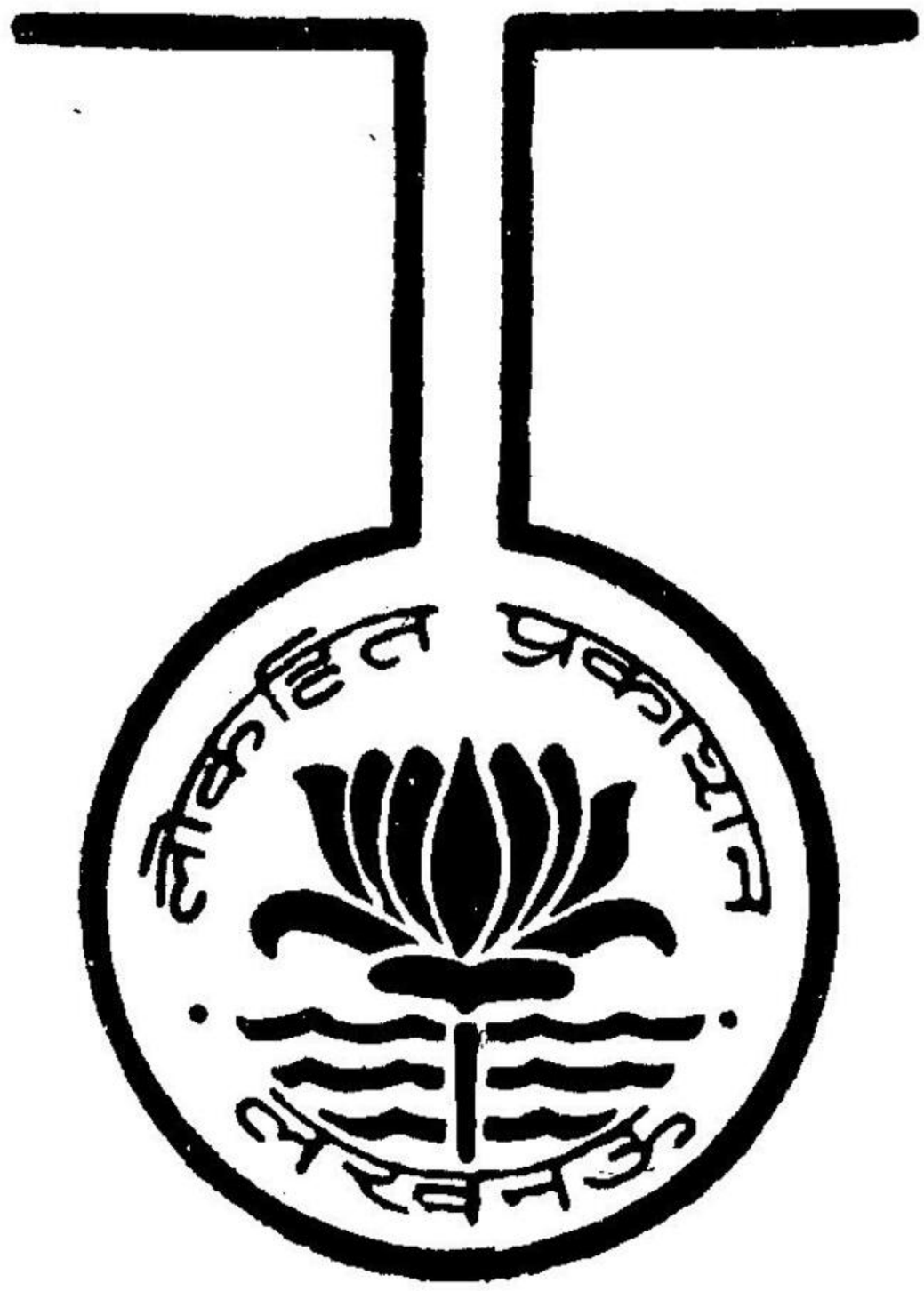

लोकहित प्रकाशन

लखनऊ